1957C Buddha - On eating meat

Bhagvan Buddha and Mansahar (In *Anekant*, March 1957)

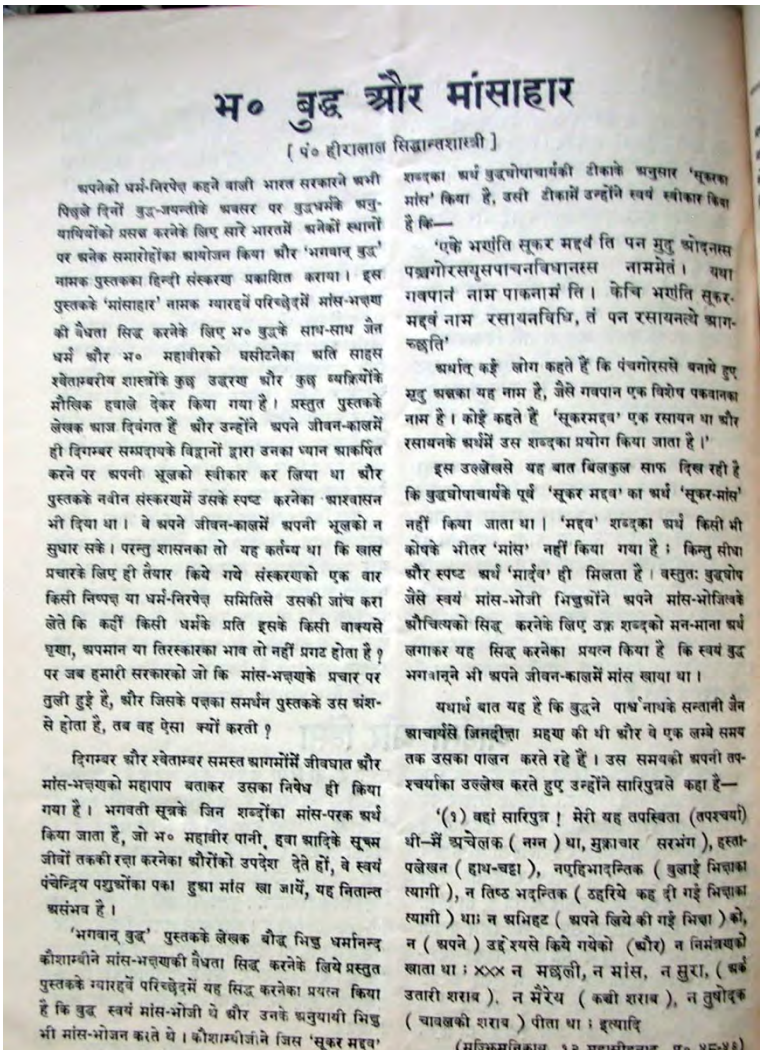

भ० बुद्ध और मांसाहार

[पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री]

अपनेको धर्म-निरपेक्ष कहने वाली भारत सरकारने अभी पिछले दिनों बुद्ध-जयन्तीके अवसर पर बुद्धधर्मके अनुयायियोंको प्रसन्न करनेके लिए सारे भारतमें अनेकों स्थानों पर अनेक समारोहोंका आयोजन किया और 'भगवान् बुद्ध' नामक पुस्तकका हिन्दी संस्करण प्रकाशित कराया। इस पुस्तकके 'मांसाहार' नामक ग्यारहवें परिच्छेदमें मांस-भक्षण की वैधता सिद्ध करनेके लिए भ० बुद्धके साथ-साथ जैन धर्म और भ० महावीरको घसीटनेका अति साहस श्वेताम्बरीय शास्त्रोंके कुछ उद्धरण और कुछ व्यक्तियोंके मौखिक हवाले देकर किया गया है। प्रस्तुत पुस्तकके लेखक आज दिवंगत हैं और उन्होंने अपने जीवन-कालमें ही दिगम्बर सम्प्रदायके विद्वानों द्वारा उनका ध्यान आकर्षित करने पर अपनी भूलको स्वीकार कर लिया था और पुस्तकके नवीन संस्करणमें उसके स्पष्ट करनेका आश्वासन भी दिया था। वे अपने जीवन-कालमें अपनी भूलको न सुधार सके। परन्तु शासनका तो यह कर्तव्य था कि खास प्रचारके लिए ही तैयार किये गये संस्करणको एक वार किसी निष्पक्ष या धर्म-निरपेक्ष समितिसे उसकी जांच करा लेते कि कहीं किसी धर्मके प्रति इसके किसी वाक्यसे घृणा, अपमान या तिरस्कारका भाव तो नहीं प्रगट होता है? पर जब हमारी सरकारको जो कि मांस-भक्षणके प्रचार पर तुली हुई है, और जिसके पक्षका समर्थन पुस्तकके उस अंशसे होता है, तब वह ऐसा क्यों करती?

दिगम्बर और श्वेताम्बर समस्त आगमोंमें जीवघात और मांस-भक्षणको महापाप बताकर उसका निषेध ही किया गया है। भगवती सूत्रके जिन शब्दोंका मांस-परक अर्थ किया जाता है, जो भ० महावीर पानी, हवा आदिके सूक्ष्म जीवों तककी रक्षा करनेका औरोंको उपदेश देते हों, वे स्वयं पंचेन्द्रिय पशुओंका पका हुआ मांस खा जायें, यह नितान्त असंभव है।

'भगवान् बुद्ध' पुस्तकके लेखक बौद्ध भिक्षु धर्मानन्द कौशाम्बीने मांस-भक्षणकी वैधता सिद्ध करनेके लिये प्रस्तुत पुस्तकके ग्यारहवें परिच्छेदमें यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि बुद्ध स्वयं मांस-भोजी थे और उनके अनुयायी भिक्षु भी मांस-भोजन करते थे। कौशाम्बीजीने जिस 'सूकर मद्दव' शब्दका अर्थ बुद्धघोषाचार्यकी टीकाके अनुसार 'सूकरका मांस' किया है, उसी टीकामें उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि—

'एके भणंति सूकर मद्दवं ति पन मुदु ओदनस्स पञ्चगोरसयूसपाचनविधानस्स नाममेतं। यथा गवपानं नाम पाकनामं ति। केचि भणंति सूकरमद्दवं नाम रसायनविधि, तं पन रसायनत्थे आगच्छति'

अर्थात् कई लोग कहते हैं कि पंचगोरससे बनाये हुए मृदु अन्नका यह नाम है, जैसे गवपान एक विशेष पकवानका नाम है। कोई कहते हैं 'सूकरमद्दव' एक रसायन था और रसायनके अर्थमें उस शब्दका प्रयोग किया जाता है।'

इस उल्लेखसे यह बात बिलकुल साफ दिख रही है कि बुद्धघोषाचार्यके पूर्व 'सूकर मद्दव' का अर्थ 'सूकर-मांस' नहीं किया जाता था। 'मद्दव' शब्दका अर्थ किसी भी कोषके भीतर 'मांस' नहीं किया गया है; किन्तु सीधा और स्पष्ट अर्थ 'मार्दव' ही मिलता है। वस्तुतः बुद्धघोष जैसे स्वयं मांस-भोजी भिक्षुओंने अपने मांस-भोजित्वके औचित्यको सिद्ध करनेके लिए उक्त शब्दको मन-माना अर्थ लगाकर यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि स्वयं बुद्ध भगवान्ने भी अपने जीवन-कालमें मांस खाया था।

यथार्थ बात यह है कि बुद्धने पार्श्वनाथके सन्तानी जैन आचार्यसे जिनदीक्षा ग्रहण की थी और वे एक लम्बे समय तक उसका पालन करते रहे हैं। उस समयकी अपनी तपश्चर्याका उल्लेख करते हुए उन्होंने सारिपुत्रसे कहा है—

'(१) वहां सारिपुत्र! मेरी यह तपस्विता (तपश्चर्या) थी—मैं अचेलक (नग्न) था, मुक्ताचार (सरभंग), हस्तापलेखन (हाथ-चट्टा), नएहिभादन्तिक (बुलाई भिक्षाका त्यागी), न तिष्ठ भदन्तिक (ठहरिये कह दी गई भिक्षाका त्यागी) था; न अभिहट (अपने लिये की गई भिक्षा) को, न (अपने) उद्देश्यसे किये गयेको (और) न निमंत्रणको खाता था; ××× न मछली, न मांस, न सुरा, (अर्क उतारी शराब), न मैरेय (कच्ची शराब), न तुषोदक (चावलकी शराब) पीता था; इत्यादि

(मज्झिमनिकाय, १२ महासीहनाद, पृ० ४८-४९)

उपर्युक्त उद्धरणसे यह स्पष्ट है कि बुद्ध मांस और मद्यका सेवन नहीं करते थे। फिर थोड़ी देरके लिये यह मान भी लिया जाय, कि पीछे उन्होंने अपनी उक्त तपस्विता-को छोड़ दिया था और मध्यम मार्गको स्वीकार कर मांसा-दिका सेवन करने लगे थे, तो भी उनके समर्थनमें या उनके महत्वको नहीं गिरने देनेके लिये श्रीकौशाम्बीजीने 'जैन श्रमणोंका मांसाहार' शीर्षक देकर जो यह लिखा है कि 'जैन सम्प्रदायके श्रमण भी मांसाहार करते थे।' यह तो उनका जैन साधुओं पर एकदम असत्य दोषारोपण है और यह लेखकके अति कलुषित हृदयका परिचायक है।

संसारके बड़े-बड़े विद्वानोंने एक स्वरसे यह स्वीकार किया है, कि जैनियोंके अहिंसा धर्मकी छाप वैदिक धर्म पर पड़ी है और उसके ही प्रभावसे याज्ञिक हिंसा बन्द हुई, उस अहिंसा धर्मके मानने वाले साधुओंकी तो बात ही दूर है, गृहस्थ तक भी मांसका भोजन तो बहुत बड़ी बात है, उसके स्पर्श तकसे परहेज रखते हैं। गृहस्थोंके जो आठ मूलगुण बतलाये गये हैं, उसमें स्पष्ट रूपसे मद्य, मांस और मधुके सेवनका त्याग आवश्यक बतलाया गया है। यथा—

मद्य-मांस मधुत्यागैः सहाणुव्रत पंचकम्।
अष्टौमूल गुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः॥

अर्थात् मद्य, मांस और मधुके त्यागके साथ-साथ अहिंसादि पांच अणुव्रतोंको धारण करना, ये गृहस्थोंके आठ मूल गुण महान् श्रमणोंने बतलाये हैं।

जिस सम्प्रदायके श्रमण अपने अनुयायी गृहस्थोंको मांस न खानेका उपदेश देते हों, वे क्या स्वयं मांस भोजी हो सकते हैं? कभी नहीं, स्वप्नमें भी नहीं।

और भी देखिए। आचार्य समन्तभद्रने अपने उसी रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें जिनधर्मको स्वीकार करने वालोंके लिए मद्य, मांस और मधुका त्याग आवश्यक बताया है। यथा—

त्रसहति परिहरणार्थं क्षौद्रं पिशितं प्रमाद परिहृतये।
मद्यं च वर्जनीयं जिनचरणौ शरण मुपयातैः॥

अर्थात् जो लोग जिन भगवानके चरणोंकी शरणमें जाना चाहते हैं, उन्हें त्रस हिंसासे बचनेके लिए मांस और मधुका, तथा प्रमादके परिहारके लिए मद्यका याव-ज्जीवनके लिए परित्याग करना चाहिए।

जिस धर्मकी नींव ही अहिंसाके आधार पर रखी गई है और जिस धर्मके पालन करने वाले गृहस्थोंके लिए मांस-मद्यका परित्याग अनिवार्य है, क्या उस धर्मके धारक और अहिंसाके आराधक श्रमणोंके द्वारा क्या स्वयं मांसाहार संभव है?

इतना सब कुछ होते और जानते हुए भी कौशाम्बी-जीने भ० महावीरको भी मांसाहारी सिद्ध करनेका निंद्य प्रयास किया है। वे अपनी उसी पुस्तकके पृ० २६६ पर लिखते हैं—

'अब तो इस सम्बन्धमें भी प्रचुर प्रमाण उपलब्ध हो गये हैं कि स्वयं महावीर स्वामी मांसाहार करते थे।'

कौशाम्बीजीने श्वेताम्बरीय भगवती सूत्र आदिके कुछ अवतरण देकरके अपने पक्षकी पुष्टि करनी चाही है। पर उन शब्दोंका वह अर्थ कदाचित् भी नहीं है जो कि कौशाम्बी जीने किया है। भगवतीसूत्रका वह अंश इस प्रकार है—

'तं गच्छह णं तुमं सीहा, मेंढियगामं नगरं रेवतीए गाहावतिणीए गिहे। तत्थ णं रेवतीए गाहावतिणीए ममं अट्ठाए दुवे कवोय सरीरा उवक्खडिया, तेहिं नो अट्ठो। अत्थि से अन्नपारि-यासिए मज्जारकडए कुक्कुडमंसए तं आहराहि, एएणं अट्ठो।'

अर्थात् जब भ० महावीरको गोशालकके द्वारा छोड़ी गई तेजो लेश्यासे सारे शरीरमें जलन होने लगी, तब उन्होंने अपने सिंह नामक शिष्यसे कहा—

'तुम मेंढिय ग्राममें रेवती नामक स्त्रीके घर जाओ, उसने मेरे लिए जो दो 'कबोय शरीर' बनाये हैं, वे न लाना, किन्तु 'मार्जारकृत कुक्कुट मांसक' लाना। उससे मेरा रोग दूर हो जायगा।

उक्त उद्धरणमें आये कपोत आदि शब्दोंका क्या वास्तविक अर्थ है, इसके लिए ७ मार्चके जैन सन्देशमें प्रकाशित निम्न अंश मननीय है—

'कपोत' 'मार्जार' 'कुक्कुट' और 'मांस' ये चारों शब्द वनस्पतिवाचक शब्द हैं, त्रसप्राणीवाचक नहीं। श्वेताम्बर सूत्रके अनुसार जो रोग भगवान् महावीरको बताया जाता है वह रोग क्या था, यह विचार करें, और फिर यह विचार करें कि उक्त रोगकी औषधि क्या हो सकती है?

'पित्तज्जरं परिगयय सरीरे दाह व कंतीए या वि विहरइ अवियाइं लोहिय वच्चाइं पि पकरेइ।'

(भग० सूत्र १५, १-पृ० ६८२)

अर्थात् भगवान्के पित्तज्वर हो गया, शरीरमें जलन होने लगी और खूनके दस्त होने लगे।

इन रोगोंको जो दूर कर सके वह औषधि हो सकती है। मांस इस रोगके सर्वथा प्रतिकूल है। देखिए—आयुर्वेदके शब्दसिन्धुकोष पृ० ७०१ और ७३६ में मांस व मछलीका गुणधर्म इस प्रकार बताया है कि वह 'रक्तपित्तजनक तथा उष्णस्वभाव हैं' मांस खानेका जिसे परहेज नहीं है ऐसा हिंसक और और अव्रती भी ऐसे रोगके समय मांस खानेसे परहेज करेगा, क्योंकि वह रोगवर्द्धक है, रोगके उपचारसे विरुद्ध है। भगवतीसूत्रके उल्लेखमें आये कपोत शब्दका अर्थ कबूतर नहीं है किन्तु कपोती एक वनस्पति है। जैसा कि निम्न प्रमाणसे स्पष्ट है, देखिए सुश्रुतसंहिता पृष्ठ ८२१ :—

श्वेत कापोती समूलपत्रा भक्षयितव्वा गोनस्य जगरां। कृष्ण कापोतीनां सनखयुष्टिम् खण्डशः कल्पयित्वा क्षीरेण विपाच्य परिस्रावितमभिहुतञ्च सकृदेवापभुञ्जीत ॥

वनस्पती श्वेत-कापोती और कृष्ण-कापोती ऐसी दो प्रकारकी कही गई है। श्वेत कापोतीका लक्षण इस ग्रन्थमें इस प्रकार बताया है :—

निष्पत्रा कनकाभाषा, मूलं द्वयं गुणसम्मिता।
सर्पाकारा लोहितान्ता, श्वेत-कापोति रुच्यते ॥

अर्थात् श्वेत-कापोती सुवर्ण-वर्ण बिना पत्तेकी, मूलमें दो अंगुल प्रमाण सर्पाकार, अन्तमें लाल रंगकी होती है। कृष्णा-कापोतीका स्वरूप बताया है.—

सक्षीरां रोमशां मृद्वी, रसेनेक्षुरसोपमाम्।
एवं रूपरसाञ्चापि, कृष्णकापोतिमादिशेत् ॥

जिसमें दूध पाया जाय, रोम वाली, नरम, गन्ने समान मीठा जिसका रस हो वह कृष्णा-कापोती है।

कापोत या कापोती साधारणतया कबूतर और कबूतरीके अर्थमें प्रसिद्ध है, पर सुश्रुत नामक आयुर्वेद ग्रन्थके उक्त श्लोकोंमें वर्णित कापोती क्या वनस्पति (औषधि) के लिये नहीं आया है ? पाठक विचार करें।

'कवोय-शरीरे' इसमें 'कपोत-शरीर' शब्दसे जड़ और पत्ते समेत कपोत फल ऐसा अर्थ है। 'शरीर' शब्द वनस्पति प्रकरणमें फल, पत्र, जड़ सबको ले लेनेके अर्थमें प्रयुक्त होता है। अनेक औषधियोंमें यह बताया गया है कि वह 'पञ्चांग' लेना चाहिए। अङ्ग और शरीर शब्द एकार्थ वाचक हैं। वनस्पतिके भी अङ्ग ५ निम्न प्रकार माने गये हैं। जड़, पींड, पत्ते, फूल, फल। सुश्रुतमें प्रतिपादित उल्लेखमें भी यह बताया गया है कि 'श्वेत-कापोती समूलपत्रा भक्षयितव्या' अर्थात् जड़ पत्तों सहित खानी चाहिये।

पाठक विचार करें कि यथार्थमें कपोत या कपोती शब्दसे और शरीर शब्दसे उस रोगोत्पत्ति नाशक प्रकरणमें 'कपोती वनस्पति' का अर्थ लिया जायगा या कबूतरके मांस का'

आयुर्वेदमें सैंकड़ों वनस्पतियाँ ऐसी हैं जिनका नाम प्राणीके आकार, रूप रङ्ग परसे उस प्राणी जैसा ही नाम रख दिया गया है। पर उससे प्रकरण तो प्राणीके खानेका नहीं, वनस्पति सेवनका है।

प्रकरणवशादर्थगतिः'

शब्दका अर्थ प्रकरणके वश लगाना चाहिये। भोजनार्थी यदि भोजनके समय 'सैंधवमानय' अर्थात् 'सैन्धव लाओ' ऐसा कहे तो उस प्रकरणमें सैन्धवका अर्थ सैंधा नमक ही होगा 'घोड़ा' नहीं। यद्यपि 'सैंधव' शब्दका अर्थ सेंधा नमक भी है और घोड़ा भी। यात्राके प्रसंग पर यदि वह वाक्य बोला गया होता तो सैंधवका अर्थ 'घोड़ा' होता, नमक नहीं। इसी प्रकार कपोत शब्दका कबूतर भी अर्थ है और कापोत नामक वनस्पति भी। औषधिके प्रकरणमें उसका औषधि अर्थ लिया जायगा कबूतर नहीं। अब आगे देखिए—

कृष्ण कापोतीको 'रोमवाली' कहा है सो रोम तो बालोंको कहते हैं और बाल पशु पक्षीके शरीरमें होते हैं पर क्या 'रोम' शब्द पढ़ कर उसे पक्षी समझ लिया जाय ? कदापि नहीं, वहाँ तो सुश्रुतकार स्वयं 'रोमवाली' कह कर भी उसका अर्थ वनस्पति की पहिचान मात्र कहते हैं।

कापोती कहाँ पाई जाती हैं इस सम्बन्धमें सुश्रुतकार लिखते हैं :—

कौशिकीं सरितं तीर्त्वा संजयानयास्तु पूर्वतः।
क्षिति प्रदेशो वाल्मीकै राचितो योजनत्रयम्।
विज्ञेया तत्र कापोती श्वेता वल्मीक मूर्धसु।

अर्थात् श्वेत कापोती—कौशिकी नदीके पार संजयंतीके पूर्व ३ योजनकी भूमि है जो सर्पकी बांबियोंसे विस्तृत है, वहाँ बाँबियोंके ऊपर पैदा होती है।

उक्त उद्धरणसे यह दर्पणकी तरह स्पष्ट है कि औषधिके प्रकरणमें 'कापोती' का अर्थ उक्त वनस्पति है, 'शरीर' का अर्थ समूलपत्रांग है न कि 'कबूतर के शरीर'।

दूसरी बात 'मज्जारकृतकुक्कुट-मांस' शब्द पर विचार करना है।

मज्जार-मार्जार बिल्लीका वाचक है, सत्य है ? बिल्ली का वाचक 'विडार' भी है। विडारके नाम पर प्रसिद्ध औषधि है जिसे विदार' या 'विदारीकन्द' कहते हैं।

कुछ प्रमाण देखिए—

(१) 'विडाली स्त्री भूमिकूष्माण्डे'

—शब्दार्थ चिन्तामणि

अर्थात् 'विडाली' शब्द स्त्रीलिंग है और भूमिमें होने वाले 'कूष्माण्ड' जिसे हिन्दीमें 'कुम्हड़ा' या 'काशीफल' कहते हैं उस अर्थमें आता है।

(२) 'विडालिका स्त्री भूमिकूष्माण्डे'

—वैद्यक शब्दसिंधु।

इसका अर्थ ऊपर प्रमाण ही है।

(३) 'विदारी द्वयम् विदारी क्षीर विदारी च।'

अर्थात् विदारी या विडारी दो प्रकार है एक सामान्य विदारी एक क्षीर विदारी। क्षीर विदारीका अर्थ है जो क्षीर कहिये दूधको विदारण कर दे। चूंकि बिल्ली दूधको बचने नहीं देती इस अर्थसे विदारीकन्द जो दूधको दूध नहीं रहने देता, उसका विदारण कर देता है इस अर्थ साम्यके कारण उसे क्षीर विदारी या विदारी या विडारी कहते हैं। लोकमें विडारी या विडारिकाका अर्थ बिल्ली माना जाता है। पर इस प्रकरणमें ग्रन्थकारने उसे 'भूमि-कूष्मांड' या विदारीकन्दके नामसे स्वयं उल्लेख किए हैं।

'गजवाजिप्रिया वृष्या वृक्षवल्ली विडालिका'

यह 'विडालिका' नामक वृक्षकी बेल हाथी और घोड़ों-को प्रिय है, वे खाते हैं और वह पुष्टिकारक है।

इस श्लोकके पढ़नेके बाद 'विडालिका' का अर्थ वृक्षकी बेल स्पष्ट हो जाता है न कि बिल्ली। शब्द प्रयोगमें कभी कभी श्लोकमें यदि विडालिका चार अक्षरका शब्द नहीं बनता तो पर्यायवाची 'मार्जार' शब्दका भी प्रयोग कर दिया जाता है। संस्कृत साहित्यमें इसके सैकड़ों उदा-हरण हैं।

कुक्कुट शब्दका विचार

सुनिषण्णक नामक वनस्पतिका दूसरा नाम कुक्कुट है। देखिये—

कुक्कुटः कुक्कुटकः (पुंलिंगः) सुनिष्पण्णकशाके—शब्दसिंधु पृष्ठ-२२६,सुनिषण्णः सूचिपत्रश्चतुष्पत्रोवितन्नुकः। श्रीवारकः सितिवारः स्वास्तिकः कुक्कुटः सितिः॥

अर्थात् सुनिषण्णकके इतने नाम हैं—

सुनिषण्ण—सूचीपत्र—चतुष्पत्र, वितुनक, सितिवार, स्वास्तिक, 'कुक्कुट' सिति। इसमें सुनिषण्ण वनस्पतिको 'कुक्कुट' यह नाम भी दिया है। जिससे यह स्पष्ट है कि यह भी एक वनस्पति है। शब्दसिन्धुमें इसे 'शाल्मलि लिखा है।

मांस शब्द जिस तरह मनुष्य पशु पक्षीके स्थिर रक्त रूप' अर्थमें आता है वैसे ही अनेक ग्रन्थोंमें फलके गूदेको भी मांस नामसे लिखा है।

अनेक प्रमाण इसके हैं—

रोम शब्द—वनस्पतिके रेशोंमें, रक्त शब्द—वनस्पतिके रसमें, मांस शब्द—वनस्पतिके गूदेमें, अस्थि शब्द—वनस्पतिके बीजोंमें प्रयुक्त किये हैं।

कुछ उदाहरणोंसे यह स्पष्ट हो जायगा।

'मूले कंदे छल्ली पवाल साल दल कुसुम फल बीजे'

—गोमटसार जीवकांड (दिगम्बर जैन करणानुयोग)

इस श्लोकमें सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित वनस्पतिके प्रकरणसे छल्ली शब्दका संस्कृत शब्द 'त्वक्' बताया गया है।

'तनुकतरा' शब्दमें पतलातनु माने पतली छाल अर्थ किया गया है।

त्वक् शब्द चमड़ेके अर्थमें भी आता है और यहां 'छाल' के अर्थमें आया है।

देखिए वाग्भट (वैद्यकग्रन्थ) में—

त्वक् तिक्तकटुका स्निग्धा, मातुलिंगस्य वातजित्। वृहणं मधुरं मांसं वातपित्त हरं गुरु। अर्थात् मातुलिंग (बिजौरा) की छालके लिए त्वक् शब्द आया है जो चमड़ेके अर्थमें भी आता है। मातुलिंगका गूदा पुष्टिकर मीठा और वातपित्तनाशक है। यहां गूदाके लिये 'मांस' शब्द लिखा गया है।

इस तरहके अनेक प्रकरण हैं जिनसे यह स्पष्ट है कि त्रस प्राणीके शरीरके वर्णनमें 'त्वक्' शब्दका अर्थ चमड़ा है। रक्तका अर्थ खून और मांसका अर्थ जमा हुआ खून है। अस्थिका अर्थ हड्डी है। किन्तु वनस्पति प्रकरणमें इन सभी शब्दोंका क्रमशः अर्थ त्वक्-छाल। रक्त-रस। मांस-

गूदा याने फलका गर्भ भाग। अस्थिका अर्थ फलके बीज हैं।

दशवैकालिक (श्वे० सूत्र) में वर्णित—

बहुअट्ठियं पुग्गलं अनिमिसं बहुकायं' आदि वाक्योंमें बहुत 'अस्थि' वाले पुद्गल अर्थात् फल, बहुत कांटे वाले फल आदिके खानेका निषेध किया है। यहां अस्थि शब्द बीजका वाचक है तथापि लोकमें साधारणतया अस्थि नाम हड्डीका है।

इस प्रकारके शब्दोंके प्रयोग ग्रंथकारोंने किये हैं। क्यों किए ? इसका भी एक कारण है। त्रस प्राणीके शरीरमें जो स्थान चमड़ा, रक्त, मांस और हड्डीका है, फलके निर्माण में भी उसी प्रकार छाल, रस, गूदा और बीजका भी है। रचना प्राणि-जगत्में करीब-करीब समान पाई जाती है। उस लिहाजसे अनेक स्थानोंमें न केवल श्वेताम्बर जैन आगमोंमें बल्कि आयुर्वेदके प्रधानतम ग्रन्थोंमें सर्वत्र ऐसे शब्दोंका प्रयोग पाया जाता है।

उक्त सभी शब्दके अर्थको विचार करने पर फलितार्थ यह होता है कि—'गोशालकके द्वारा तेजोलेश्या छोड़े जाने पर भ० महावीरको पित्तज्वर-दाह आदि रोग होगया और उसके दूर करनेके लिए उन्होंने सिंह नामक शिष्यकी प्रार्थना पर यह आज्ञा दी कि—

मेंढियग्राममें रेवतीके घर जाओ। उसने मेरे रोग-शमनार्थ जो दो कपोतफल समूल-पत्र बनाकर रखे हैं, वे न लाना। कारण वे मेरे निमित्तसे बनाये हैं। उनके खानेमें उद्दिष्ट दोष होगा। तुम उससे 'बिडारी कन्द' के द्वारा हुए यानी उसकी भावना दिए हुए शाल्मली वृक्षके फलके गूदेको लाना, जो उसके पास पहलेसे तैयार रक्खा है। जिससे उद्दिष्टका दोष न आवे।

यह उस प्रकरणका संगतार्थ है। पर कौशाम्बीजीने अपने प्रयोजनको सिद्ध करनेके लिए जानबूझ कर उक्त शब्दों-के अर्थका अनर्थ कर भ० महावीर और जैन लोगोंको लांछित करनेका घृणित एवं निंद्य प्रयास किया है।

जैनोंके सभी सम्प्रदायवालोंका इस समय यह परम कर्तव्य है कि वे एक स्वरसे उक्त अंशका प्रबल विरोधकर उसे उस पुस्तकमेंसे निकाल देनेके लिए भारत सरकारके शिक्षा विभागको बाध्य करें। अन्यथा यह पुस्तक भविष्यमें अहिंसाको परम धर्म मानने वाले जैनियोंका मुख ही कलंकित नहीं करेगी, अपितु जैन संस्कृतिको ही समाप्त करने वाली सिद्ध होगी।